पंचायत राजव्यवस्था में दलितों की भूमिका का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ0 निरंकार सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर (समाजशास्त्र)
एम0 जी0 एम0 कालेज सम्भल
उत्तर प्रदेश भारत

सारांश

भारतीय लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था का मूल आधार पंचायत राज व्यवस्था रही । सभ्य समाज की स्थापना के बाद से ही मनुश्य ने जब समूहों में रहना सीखा, पंचायत राज के आदर्श एवं मूल सिद्धान्त उसकी चेतना में विकसित होते आए है। इस व्यवस्था को विभिन्न कालो में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता रहा। कभी वे गणराज्य कहलाए, कभी नगर शासन व्यवस्था और किसी अन्य नाम से उनकी पहचान हुई, लेकिन उन सारी व्यवस्थाओं में एक-दूसरे के साथ रहने, मिल-जुल कर काम करने और अपनी तात्कालिक समस्याओं को अपने आप सुलझाने की प्रवृत्ति निरन्तर विकसित होती रही । सहकारिता और आत्मनिर्भरता का स्वावलंबन इन व्यवस्थाओं का मूल मंत्र रहा है । हमारे इतिहास में जब भी शासन व्यवस्था की चर्चा हुई है, राज्य के आश्रम से अलग एक व्यवस्था का उल्लेख भी आया है । चाहे उसे राज्य पर धर्म का प्रभाव कहा जाए या पंचों की राय माना जाए लेकिन सार्वजनिक हित में काम करने की भावना हर स्थिति में बलवती रही है और यही भावना अनेक रुपों में प्रकट होती रही है । हमारे दर्शन, ग्रंथो, इतिहास तथा साहित्य और समाज में भी सबको साथ लेकर चलने और सबके हित के लिये कार्य करने की प्रेरणा को बल मिला है । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भारतीय जन-मानस की इस प्रवृत्ति को नया रुप देने का प्रयास किया कि समष्टि में ही व्यक्ति का अपना हित समाहित है।

मुख्य शब्द : दलित, पंचायत राज व्यवस्था, आरक्षण और संवैधानिक प्रावधान

परिचय

महात्मा गांधी ने स्वतंत्र भारत में एक मजबूत पंचायती राज शासन पद्धति का स्वप्न संजोया था जिसमें शासन कार्य की सबसे प्रथम इकाई पंचायते होंगी । उनकी कल्पना पंचायतों की शासन व्यवस्था की धुरी होने के साथ ही आत्म निर्भर, पूर्णतया स्वायत्त और स्वावलंबी होने की थी । स्वतंत्रता के पश्चात् महात्मा गांधी की इस परिकल्पना को साकार करने हेतु समय-समय पर प्रयास किए गए । कभी ग्रामीण विकास के नाम पर और कभी सामुदायिक विकास योजनाओं के माध्यम से पंचायतों को लोकतंत्र का मूल आधार मजबूत बनाने के लिये उपयोग किया जाता रहा । अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग तरह के प्रयोग इसके लिये चले । कुछ असफल रहे तो कुछ सफल रहे और अन्य राज्यों के लिये अनुकरणीय बने । लेकिन पूरे देश में प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करके बुनियादी स्तर पर पंचायती राज की स्थापना और जनता के हाथ में सीधे अधिकार देने की शुरुआत संविधान के ७३वें संविधान अधिनियम के माध्यम से संभव हुई। ७३वें संविधान संशोधन अधिनियम ने भारत में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया । पंचायतों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछडे वर्ग एवं महिलाओं को आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ । अनुसूचित जाति भारतीय सामाजिक पदसोपान व्यवस्था में निम्नस्थ रही है। परम्परागत भारतीय समाज में संस्तरीकरण की जिस परम्परागत व्यवस्था का अनुमोदन किया है उसके द्वारा भारतीय समाज में असमानता और विभेदीकरण को संस्थागत तथा वैध स्वरुप प्राप्त हुआ है । जाति पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था समूहों को न केवल श्रेणीबद्ध तथा असमान वर्गो में विभक्त करती है बल्कि यह व्यवस्था अत्यंत जटिल, जन्म प्रदत्त और सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से मान्यता प्राप्त रही है। समाज के निम्न वर्ग जिन्हे शुद्र या आधुनिक काल में अनुसूचित जाति के नाम से सम्बोधित किया जाता है वह अनेक प्रकार की सामाजिक, धार्मिक निर्योयताओं की शिकार रही है तथा विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक संरचनाओं, परम्परागत आर्थिक सम्बन्धों और सामाजिक संस्थाओं के द्वारा उनके शोषण और उत्पीडन को सामाजिक स्वीकृति प्रदान की गयी है। परिणमतः भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंश सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत निम्न और असूहय परिस्थितियों में जीवन यापन करता रहा है ।

शताब्दियों के शोषण, अन्याय और मुख्य सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन धारा से पृथक्कता के कारण अनुसूचित जाति समुदाय के सदस्यों में दासता की मनोवृत्ति का विकास हुआ है । इस समुदाय पर पडने वाला सामाजिक-आर्थिक संरचना का दबाव इतना अधिक प्रभावषाली रहा है कि समुदाय के सदस्यों ने अपनी निम्न स्थिति को स्वीकार करना अधिक उचित माना है । इस समुदाय की निष्क्रीयता के कारण इन्हें ‘‘अकर्मण्यता का निष्क्रीय पुंज’’ कहा जाता है । अनुसूचित जाति समुदाय ने परम्परागत सामाजिक व्यवस्था की असमानता और शोषण को अपने भाग्य और जीवन-चक्र का एक आवश्यक अंग मानकर व्यवस्था के प्रति किसी भी प्रकार का आक्रोश या प्रतिक्रिया व्यक्त करने की अपेक्षा मौन स्वीकृति को अधिक श्रेयस्कर माना है।

आधुनिक काल में अनुसूचित जाति समुदाय की सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने के लिये तथा शोषण, अन्याय और असमानता की व्यवस्था का अन्त करने के लिये स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व से ही अनेक महत्वपूर्ण प्रयत्न किए गये हैं। ब्रिटिश काल में पुलिस, कानून और न्याय की नवीन व्यवस्था ने कानून के सम्मुख समानता के सिद्धान्त को प्रथम बार स्वीकार करके परम्परागत जातिगत संस्तरण पर आधारित न्याय और सामाजिक आदान-प्रदान की व्यवस्था पर आघात किया। ब्रिटिश काल में ही अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन, नवीन शिक्षा प्रणाली, पाश्चात्य के मूल्य, आदर्श और संस्थायें तथा नवीन सामाजिक विधानों ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता और शोषण के प्रति समाज में प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान आकर्शित किया। स्वतंत्रता आन्दोलन की अवधि में महात्मा गांधी के नेतृत्व में हरिजन कल्याण कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया जाने लगा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस कार्य को नवीन संवैधानिक, राजनीतिक और आर्थिक बल प्रदान किया गया।

स्वतंत्र भारत की जनवादी राजनीतिक संरचना सहभागिता के मूल्य पर आधारित है । राजनीतिक व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति को सक्रिय रुप से भाग लेने का अवसर प्रदान किया गया है। समाज के निर्बल वर्ग, विशेषकर अनुसूचित जाति और जनजाति के व्यक्तियों को, राजनीतिक सहभागिता का अवसर प्रदान करने के लिये तीन प्रकार की व्यवस्थाओं को मुख्य रुप से अपनाया गया है। प्रथम, अनुसूचित जाति समुदाय की सामाजिक-आर्थिक उन्नति के लिये शैक्षणिक कल्याण की योजनायें अपनायी गयी है । द्वितीय, सरकारी नौकरियों में आरक्षण की व्यवस्था । तृतीय, राजनीतिक आरक्षण की व्यवस्था। इस व्यवस्था के अधीन लोकसभा और विधानसभा के कुछ स्थान अनुसूचित जाति के सदस्यों के लिये आरक्षित कर दिए गए हैं तथा ऐसे आरक्षित निर्वाचन क्षेत्रों में उच्च जाति से स्पर्धा के अभाव में उन्हें चुने जाने की सुविधा प्राप्त है और यह अपेक्षा की गयी है कि ऐसे चुने गए अनुसूचित जाति के सांसद और विधायक अपने समुदाय के हितों की रक्षा एवं सामुदायिक कल्याण कार्यक्रमों के निर्धारण, क्रियान्वयन और मूल्यांकन मे प्रत्यक्ष रुप से भाग लेंगे। इन व्यवस्थाओं के अतिरिक्त अनुसूचित जाति के कल्याण के लिये अनेक वैधानिक प्रशासनिक और आर्थिक कदम भी उठायें गये हैं जिनका सामान्य लक्ष्य हरिजन समुदाय के लोगों के शोषण का अंत करके उन्हे सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय और समान रुप से भाग लेने के योग्य बनाना है।

समकालीन आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था ने अनुसूचित जाति के सदस्यों की जाति संरचना में स्वायत्ता को प्रोत्साहन प्रदान किया है। परम्परागत निम्न सामाजिक प्रस्थिति से वे उच्च आर्थिक और राजनीतिक स्थिति सैद्धान्तिक रुप से प्राप्त कर सकते हैं। व्यस्क मताधिकार, आरक्षण की व्यवस्था, अस्पृश्यता उन्मूलन, संवैधानिक उपबन्ध आदि परम्परागत प्रस्थितिकीय विभेदीकरण पर आघात पहुँचाकर निम्न जाति के सदस्यों को उच्च जाति के समकक्ष स्थिति प्राप्त करने का अवसर प्रदान करते है। साथ ही उन्हें राजनीतिक दृष्टि से अधिक जागरुक सक्रिय और सहभागी होने का भी अवसर प्राप्त हुआ है । इसी

PUNE RESEARCH TIMES ISSN 2456-0960
AN INTERNATIONAL JOURNAL OF CONTEMPORARY STUDIES VOL 4, ISSUE 1

क्रम में ७३वें संविधान संशोधन अधिनियम में अनुसूचित जाति वर्ग के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में पंचायतों में सदस्य एवं प्रमुखों के पद आरक्षित किये गये है ।

''अनुसूचित जाति''[१] एक संवैधानिक शब्दावली है जिसका प्रयोग उन समुदायों के लिये किया जाता है जो हिन्दू सामाजिक संरचनाओं में निम्नतर स्थान रखते हैं। निम्नतर स्थान का आधार इन जातियों के उस परम्परागत कार्य से जुडा हुआ हैं। जिसे हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत अपवित्र माना गया है । पहली बार अनुसूचित सम्बोधन पद का प्रयोग साइमन कमीशन ने किया । १९३५ के भारत सरकार अधिनियम में इस पद को प्रतिस्थापित किया गया । आजादी के बाद भारत के संविधान में इस कोटि के लोगों को संवैधानिक सुरक्षा एवं अन्य सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से इस शब्द को यथावत रखा गया है। संविधान के अनुच्छेद ३६६(२४) में स्पष्ट किया गया है कि अनुसूचित जाति से अभिप्राय ऐसी जातियॉ या जातियों के भाग से है जो इस संविधान के प्रयोजनों के लिये अनुच्छेद-३४१ के अधीन अनुसूचित जातियॉ समझी जाती है। अनुच्छेद ३४१(१) के आधीन राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहॉ वह राज्य है, वहॉ के राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूलवंशों या जातियों के भागों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हे इस संविधान के प्रयोजनों के लिये उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियॉ समझी जायेगी।

डा० अम्बेडकर[२] के अनुसार आदिकालीन भारत में इन्हे 'भग्न पुरुष'; ठतवामदद्ध या ब्राह्यजाति ;व्नज बेंजेद्ध माना जाता था । अंग्रेज उन्हें दलित वर्ग;क्मचतमेमक ब्सेंेद्ध कहते थे। १९३१ की जनगणना में उन्हें 'बाहरी जाति'; म्गजमतपवम बेंजमद्ध के रुप में वर्गीकृत किया गया था । महात्मा गांधी ने उन्हे 'हरिजन' (ईश्वर के बालक) की संज्ञा से पुकारा । अस्पर्श जाति में शिक्षित लोगों ने इस नामाकरण को स्वीकार नही किया क्योंकि वे सोचते थे कि 'हरि' के 'जन' कहकर असमानता को जन्म देने वाली व्यवस्था को समाप्त करने की अपेक्षा उनकी दशा में सुधार लाने के प्रयत्न किये जा रहे थे । भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी साइमन कमीशन द्वारा गढे गये शब्द का प्रयोग किया।

साइमन कमीशन[३] ने किसी जाति को अनुसूचित जाति में सम्मलित करने के लिये १३ आधार बताए है । इनमें से कुछ इस प्रकार है -

- क्या वह जाति उच्च जाति को अपने स्पर्ष या निकटता से अपवित्र करती है?
- क्या वह जाति मंदिरों में प्रवेष नही कर सकती?
- क्या वह जाति स्कूलों, कुंओ और अन्य सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग से वंचित की जाती है ?
- क्या उस जाति के लिये ब्राहमण पुरोहित का कार्य कर सकते है?
- क्या उस जाति के लिये धोबी, नाई, कहार, आदि कार्य कर सकते है?
- क्या वह जाति ऐसी है जिसके हाथों से हिन्दू पानी ले सकता है?

- क्या उस जाति का षिक्षित व्यक्ति सामान्य सामाजिक आदान–प्रदान उच्च जाति के व्यक्ति के द्वारा समान समझा जायेगा?
- क्या वह जाति अपने ही अज्ञान, अषिक्षा व गरीबी के कारण 'दलित' है और क्या (अज्ञान, अषिक्षा, गरीबी) न होने से वह सामाजिक रुप से निर्योग्य नही हो सकती?
- क्या वह जाति अपने व्यवसाय के कारण 'दलित' मानी जाती है ?

अनुसूचित जातियों का मुख्य निवास स्थान १५ राज्य[४] है, जहॉ इनकी आबादी एक करोड़ से भी अधिक है । १५ राज्यों में से सबसे अधिक (२८.३१ प्रतिशत) आबादी पंजाव में है जबकि ७.४० प्रतिशत के साथ असम का स्थान सबसे नीचे है । पंजाब के बाद घटते हुए क्रम में क्रमशः १४ प्रमुख राज्य है - पश्चिम बंगाल(२३.६२) प्रतिशत, उ० प्र० (२१.०५) प्रतिशत, हरियाणा (१६.७५) प्रतिशत, तमिलनाडु (१६.१८) प्रतिशत, राजस्थान (१७.२६) प्रतिशत, उडीसा (१६.२०) प्रतिशत, आन्ध्र प्रदेश (१५.६३) प्रतिशत, बिहार, (१४.५५) प्रतिशत, महाराष्ट्र (११.०६) प्रतिशत, केरल (६.६२) प्रतिशत, गुजरात (७.४१) प्रतिशत और असम (७.४०) प्रतिशत ।

जहॉ तक पूरी संख्या का सम्बन्ध है उ० प्र० में अनुसूचित जाति की जनसंख्या २६३ लाख है और उसके बाद पश्चिमी बंगाल (१६१ लाख), बिहार (१२६ लाख), तमिलनाडु (१०७ लाख), आन्ध्र प्रदेश (१०६ लाख), मध्य प्रदेश (६६ लाख), महाराष्ट्र (८८ लाख) राजस्थान (७६ लाख), केरल (२६ लाख) और असम (१७ लाख) का स्थान है। उ० प्र० और पश्चिमी बंगाल में भारत की एक तिहाई अनुसूचित जाति की जनसंख्या रहती है ।

प्रत्येक राज्य में जातियों की सूची दर्ज होती है, उक्त सूचियों के अनुसार १९८१ तक पूरे देश में ११११ अनुसूचित जातियॉ है, उक्त नामों की सूची में एक ही लाभी कई राज्यों में शामिल है। जैसे चमार, उ० प्र०, म०प्र०, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, जम्मू एवं कश्मीर । भारत के कुल (४६.३५) समुदायों (जाति समूहो) में ७५१ अनुसूचित जाति वाले है।

अनुसूचित जनसंख्या बाहुल्य प्रदेषो में अनुसूचित जाति वाले समुदायों की संख्या

क्र०सं०	क्षेत्र	अनुसूचित जाति वाले समुदायो की संख्या
१	उ० प्र०	८८
२	बिहार	२४
३	पष्चिमी बंगाल	४६
४	तमिलनाडु	४१
५	आन्ध्र प्रदेश	४४

६	मध्य प्रदेश	५३
७	राजस्थान	३६
८	कर्नाटक	५६

उ०प्र०,में ६६ समुदाय अनुसूचित जाति के रूप में दर्ज हैं। जिसकी जनसंख्या २००१ की जनगणना के अनुसार ३५१.४८ लाख हैं। यह प्रदेश की कुल जनसंख्या का २१.१० प्रतिशत हैं। देश में अनुसूचित जाति की सबसे अधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश में हैं। प्रदेष में अनुसूचित जातियों की कुल जनसंख्या में अधिकतम जनसंख्या ८८ प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में रहती हैं। जबकि १२ प्रतिशत षहरी क्षेत्रों में रहती हैं। प्रति हजार अनुसूचित जाति पुरुष पर अनुसूचित जाति की महिलाओं की संख्या ८६७ हैं। उत्तर प्रदेश सरकार द्वार घोषित जो अनुसूचित जातियां[५] हैं। उनकी नाम निम्न प्रकार हैं।

अगरिया, बादी, बधिक, बहेलिया, बैगा, बैसबार, बजनिया, बाजगी, बलहर, बलई, बाल्मीकि, बंगाली, बनमानुश, बासफोर, बरवार, बसोर, बावरिया, बेलदार, बेड़िया, भांतू , भुईयां, भुईयार, बौरिया, चमार, चैरो, दबकर, धन, धानुक, धर, धोबी, डोम, डोमर, दुसाध, धरमी, धासिया, ग्वाला, हबूड़ा, हरी, हैला, कलाबाज, कंजड़, कपड़िया, करबल, खैरहा, खारोट, खरबार, खटिक, कोल, कोरवा, कोरी, लालबैगी, मजहर्ब, मुसहर, नट, पंखा, परहिया, पासी, पतरी, रावत, सहरिया, सनौरिया, सांसिया, षिल्पकार, तुरया, मझबार, गोंड़,

पंचायती राज का विकास –

प्राचीन काल से ही पंचायतें हमारी सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था का अंग रही हैं । १९९२ में सांसद ने स्वावलम्बन और समानता के उद्देष्य से संविधान में ७३वें संशोधन के माध्यम से पंचाती राज का संवैधानिक हैसियत प्रदान कर सत्ता में आम आदमी की भागीदारी का रास्ता खोला । सत्ता के विकेन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया पंचायती राज के दर्शन के निरन्तर विकास का परिणाम हैं। पंचायत-व्यवस्था का उद्भव कब हुआ तथा इसका तत्कालीन स्वरुप क्या था? कहना काफी कठिन हैं। यह अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि जब मानव समाज का उदय हुआ लगभग उसी समय से पंचायती राज व्यवस्था का भी उदय हुआ । पांच व्यक्तियों की सभा एक प्राचीन संस्था है जिसका अस्तित्व अनेक राजनैतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के पश्चात् भी बना रहा है।[६]

भारतीय वैदिक कालीन ग्रन्थों में भी सभा और समितियों जैसी लोकतान्त्रिक संस्थाओं का वर्णन मिला है। यह सभा और समितियां प्रषासन के क्षेत्र में अपने स्वामी को सहयोग प्रदान करतीं थीं । अथर्ववेद में सभा का स्वरुप निम्नलिखित श्लोक में दृश्टव्य है।[७]

“येद ग्रामा यद् अरण्य या सभा अभियभ्याम ।
ये संग्रामाः समितियस्तेशु चारु वेदमते ।।”
सुन्दर वेदयुक्त वाणी का प्रयोग।”

अथर्ववेद में ही एक अन्य स्थान पर भी सभा का वर्णन पाया जाता है यथा[८]

“सभा व सासमितिश्रृचवंता प्रजापते दुविदानें।
येन संग्छा उपभास शिक्षान्चारु वदानि पितरः संगतेशु।।”

“अर्थात सभा और समिति प्रजापति के लिये दुहिता (सम्पोषण योग्य), वे दोनों (सभा और समिति) प्रजापति की रक्षा करें। प्रजापति को वे उचित सम्मति प्रदान करें। हे विद्वानों! मुझे ऐसी बुद्धि प्रदान करों जिससे मै सभा और समिति में सुन्दर विवेक युक्त वाणी का प्रयोग करुं।”

वैदिक युग के पश्चात् रामायण युग में भी सभा एवं समितियों का वर्णन दृष्टिगत होता है, यथा-[९]

“यदिदमेअनु रुपार्थ मया साधु सुमिन्त्रतम् ।
भवन्तो मेअनुमन्यतां वयं वा करभाभ्यहम् ।।

“अर्थात् यदि मेरे द्वारा कहे गये उत्तम एवं सानुकूल विचार जिनको मैने आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। आपको उचित प्रतीत होते हों तो उन विचारों को क्रियान्वित करने की आज्ञा प्रदान करें अथवा मुझे इस सम्बन्ध में क्या करना चाहिये, इस प्रकार का मार्गदर्शन करें।”

रामायण युग में जनपदों का भी अस्तित्व था । तत्कालीन व्यवस्थाओं में जनपदों को ग्रामीण गणराज्यों के संघों के रुप में जाना जाता था।[१०]

महाभारत कालीन व्यवस्था में भी सभा जैसी संस्थाओं का अस्तित्व बना हुआ था । महाभारत के शांति पर्व नामक अध्याय में इसका वर्णन प्राप्त होता है।

इसके अतिरिक्त स्मृति की पुस्तकों में भी सभा और समितियों का वर्णन प्राप्त होता है । जिनके अन्तर्गत राजा के लिये विभिन्न सामाजिक परंपराओं का पालन करना अनिवार्य होता था। इसके आघार पर ही विभिन्न वर्गो को अपने लिये नियम बनाने का अधिकार प्राप्त था । मनु स्मृति के अनुसार ग्रामीण-शासन के लिये जो कर्मचारी उत्तरदायी होता था उसे “ग्रामीक” के नाम से जाना जाता था । इस पदाधिकारी का प्रमुख कार्य ग्रामवासियों से करों को एकत्रित करना था।[११]

ग्राम-सभाओं के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए डा० जायसवाल ने लिखा है कि “प्राचीनतम” उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जीवन और कार्यो की अभिव्यक्ति ग्राम-सभाओं के माध्यम से ही होती थी।[१२] किन्तु समय के गर्त में प्रणाली प्रमुख रुप से उत्तर भारत में समाप्त हो गयी और इसी के साथ ही शनैः शनैः ग्रामीण स्थानीय संस्थाएं भी समाप्त हो गयीं।

मध्ययुगीन हिन्दू काल में भी ग्रामीण स्थानीय प्रषासन विद्यमान था । उस समय नये भू-भागों में ग्राम का श्रेष्ठ व्यक्ति खास होता था और उन ग्रामीणों के न्यासी के रुप में कार्य करता था । सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने इस प्रकार की ग्रामीण संस्थाओं के प्रति सदैव हस्तक्षेप की नीति का पालन किया था [१३]

गुप्त कालीन व्यवस्था में भी ग्राम-पंचायतों का विषेश महत्व था । यद्यपि गुप्तकाल में राजवंशी शासन-प्रणाली थी लेकिन शासन का विकेन्द्रीकरण विभिन्न स्तरों पर किया गया था । ग्राम की सुरक्षा शांति व मर्यादा के लिये ग्रामीक ही उत्तरदायी होता था । उसके इस कार्य के लिये पंचमण्डल या पंचायतें सहायतार्थ स्थापित की जाती थीं, जिनमें ग्राम के वयोवृद्ध सदस्य होते थे ।[१४]

मुगलकालीन शासन-व्यवस्था में भी ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की इकाई अपने पुरातन रुप में विद्यमान थी । अफगान और मुस्लिम शासकों ने पुरातन रुढ़ियों और अभिसमयों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित नही समझा और ना ही ग्रामीण स्वषासन व्यवस्था में कोई आमूलचूल परिवर्तन किये ग्राम-पंचायतों का कार्य पूर्व की भांति चलता रहा।[१५]

ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रामों की स्वयत्तता तथा स्थानीय प्रशासनिक संस्थाओं की निरन्तरता १८वीं शताब्दी के मध्य से १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम में समाप्त हो गयी थी। इस संदर्भ में प्रमुख कारण आंग्ल शासकों के द्वारा केन्द्रीयकृत शासन व्यवस्था को अपनाया जाना था । इस प्रकार से अंग्रेज शासक पंचायत व्यवस्था को समाप्त करने के लिये पूर्णतः उत्तरदायी थे । उन्होंने ग्रामीण स्वशासन के स्थान पर अधिकारीतंत्र को प्रोत्साहित किया, जिसका मुख्य उद्देश्य अपने शासकों को प्रसन्न रखकर भारतीय जनता का अधिक से अधिक शोषण करना था ।[१६]

परन्तु आंग्ल शासन में ही पंचायती राज व्यवस्था को पुनजीर्वित करने का प्रयास किया गया । ग्रामीण स्थानीय प्रशासन पर अपना ध्यान केन्द्रित करने वाला प्रथम वायसराय लार्ड रिपन था, जिसके प्रयासों के फलस्वरुप ही नार्थ वेस्ट प्राविन्सेस एक्ट (४) १८८३ पारित किया गया । एक्ट ने अन्तर्गत ही प्रत्येक जनपथ में एक जिला परिषद (तत्कालीन नाम डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) स्थापित किया जाना था। इसी प्रकार प्रत्येक जनपथ को उप जनपदों में विभाजित किया जाना था, इसके साथ ही प्रत्येक उप जनपद (उप जिला) में एक स्थानीय परिषद की स्थापना की जानी थी।[१७] कतिपय समय पश्चात यह व्यवस्था असफल सिद्ध होने लगी । अतः इसकी असफलताओं की जांच करने के लिये रॉयल (शाही) विकेन्द्रीकरण आयोग १९०६ की नियुक्ति की गयी । इस शाही आयोग ने अपने प्रतिवेदन में सुझाव दिया कि प्रशासन का विकास एवं प्रबन्ध तथा समस्याओं के लिये प्रमुख ग्राम में पंचायती राज की स्थापना की जाए।[१८]

सन् १९२० में ब्रिटिश सरकार ने संयुक्त प्रान्त-विलेज पंचायत अधिनियम १९२० पारित किया । इस अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न प्रान्तों ने अपने यहॉं पंचायती राज की स्थापना के लिये अधिनियमों के अनुसार पंचायतों की स्थापना का अधिकार जनपद के जिलाधिकारी को प्रदत्त कर दिया । उत्तर-प्रदेश में १९२८ के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित पंचायतें पूर्व प्रभावी संस्थाओं की छाया मात्र थी।[१९]

सन् १९५७ की क्रान्ति के पश्चात् भारत में स्वराज्य प्राप्त करने की मांग में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी । स्वराज्य की मांग के साथ ही स्थानीय स्वतंत्रता के विचारों में भी शनैः शनैः वृद्धि होने लगी

। प्रष्न यह उठा कि स्वतंत्रता का क्रियान्वयन ऊपर से किया जाए या नीचे से ऊपर की ओर । इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी का विचार था कि ‘‘स्वतंत्रता स्थानीय स्तर से प्रारम्भ होनी चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक गांव एक गणराज्य अथवा पंचायती राज होगा ।’’ प्रत्येक के पास पूर्ण सत्ता और शक्ति होगी। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक गांव को आत्मनिर्भर होना चाहिये और अपनी आवश्यकताओं का स्वयं पूर्ण करना होगा ताकि वह सम्पूर्ण प्रबन्ध स्वयं चला सके।[२०]

ब्रिटिश काल में यद्यपि पंचायती राज व्यवस्था का प्रभुत्तव समाप्त करने के लिये काफी प्रयास किये गए किन्तु इसकी जड़े बहुत गहरी होने के कारण उनका यह प्रयास सफल नही हो पाया । फलस्वरुप सन् १९२० में सभी प्रान्तों में ग्राम-पंचायत अधिनियम पारित कर उसे क्रियान्वित किया गया । इस अधिनियम के अन्तर्गत पंचायतों का चुनाव जनता द्वारा ना होकर सरकार द्धारा मनोनीत करने का प्रावधान रखा गया । पंचों को न्यायिक अधिकार भी नहीं सौपे गये। चूँकि अंग्रेज नहीं चाहते थे कि केन्द्रीय प्रशासन में किसी भारतीय निकाय व संस्था का हस्तक्षेप हो । अतः उन्होंने ग्रामीण विकास के इस स्वरुप को हतोत्साहित किया।[२१]

भारत में स्वाधीनता आन्दोलन के साथ ग्रामीण चेतना भी जागृत हुई फलस्वरुप १९१० में इलाहाबाद में आयोजित अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के २५वें अधिवेशन के दौरान ब्रिटिश सरकार के समक्ष ग्राम-पंचायतों की स्थापना की मांग रखी गयी। यह मांग अनेक अधिवेशनों में उठाई गयी। परिणामस्वरुप समय-समय पर विभिन्न प्रान्तों के लिये ग्राम-पंचायत सम्बन्धी जो अधिनियम पारित किये गये वे इस प्रकार है -

बंगाल में स्थानीय अधिनियम १९१९, मद्रास में स्थानीय सरकार अधिनियम १९२०, बम्बई ग्राम पंचायत अधिनियम प्टए १९२०, उत्तर प्रदेश पंचायत एक्ट १९२०, बिहार सरकार अधिनियम ट, १९२०, सेन्ट्रल प्रोवन्स पंचायत अधिनियम ट, १९२०, पंजाब पंचायत अधिनियम प्प्, १९२२, आसाम स्वसरकार अधिनियम १९२५ और मैसूर ग्राम पंचायत अधिनियम प्, १९२८ इत्यादि प्रमुख हैं। इन अधिनियमों के अतिरिक्त भी समय-समय पर ग्राम पंचायतों के गठन सम्बन्धी अनेक प्रयास किये गये और राष्ट्रीय नेताओं ने भी इस दिषा में अनेक ठोस कदम उठाये महात्मा गांधी ने सन् १९३२ में ग्राम स्वावलम्बन की अनेक योजनाओं का सूत्रपात किया । परन्तु स्वतंत्र भारत के संविधान में पंचायती राज व्यवस्था को कोई स्थान नही दिया गया । अतः तत्कालीन राजनीतिज्ञों के द्वारा भारतीय संविधान की कटु आलोचनाएं की गयीं । यथा ‘‘हमारे देश में ७ लाख ग्राम है और ग्राम-प्रशासन सबसे लघु ईकाई है।..... मैं यह पूछना चाहता हूँ कि संविधान की संरचना में क्या ग्रामो को कोई संवैधानिक प्रस्ताव है? नहीं, कहीं पर नहीं । स्वतंत्र देश का संविधान स्थानीय स्वायत्त-शासन पर निर्भर होना चाहिये। परन्तु इस संविधान में हमें कहीं भी स्थानीय स्वायत्त-शासन का उल्लेख नही मिलता ।[२२]

१६ नवम्बर १६४८ को संविधान सभा में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों पर विचार-विमर्श के समय संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था से सम्बन्धित एक नया अनुच्छेद रखने का प्रस्ताव रखा गया, जिसको संविधान सभा ने स्वीकार कर लिया । यह नवीन अनुच्छेद भारतीय संविधान का ४०वां अनुच्छेद था जिसमें व्यवस्था थी कि -

''राज्य ग्राम-पंचायतों को संगठित करने के लिये कदम उठायेगा तथा इनको इतनी शक्तियां तथा अधिकार प्रदान करेगा जो कि उनको स्वायत्त सरकार की इकाइयों के रुप में कार्य करने योग्य बना सकें।'' हुए तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरु ने कहा था, ''पंचायत सरकार इमारत की नीवं है यदि यह नींव मजबूत ना होगी तो उस पर खडी हुई इमारत कमजोर होगी।[२३] एक अन्य स्थान पर पण्डित नेहरु ने लिखा है कि ''हुकूमत का केन्द्रीकरण बहुत जरुरी है, मगर उसका विकेन्द्रीकरण निहायत जरुरी है । जब हम हुकूमत को विकेन्द्रीकृत करते हैं तब ग्राम-पंचायतों तक पहुॅचते हैं जो सबसे छोटी इकाई है।[२४]

पंचायती राज व्यवस्था का महत्व स्पश्ट करते हुए डे महोदय कहते है कि ''यदि निहित स्वार्थो यथा नौकरशाही, सामंतशाही, पूंजीशाही अथवा उससे भी खराब महन्त शाही की बुराईयों से छुटकारा पाना है तो पंचायती राज को सुदृढ आधार पर स्थापित करना होगा ।[२५] एक अन्य स्थान पर श्री डे महोदय ने पंचायती राज संस्थाओं की प्रकृति को स्पश्ट करते हुए लिखा है कि ''ग्राम पंचायतें जनता की संस्थाएं हैं उनको कानून एवं व्यवस्था करनी है इसी के साथ ही ग्राम की नागरिक एवं सामुदायिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी होती है।[२६]

लोकतान्त्रिक व्यवस्था की सफलता के लिये पंचायती राज संस्थाओं के महत्व को स्पष्ट करते हुये तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने विचार व्यक्त किया था कि ''पंचायती राज संस्थाओं द्वारा ही प्रजातंत्र के उचित रुप की स्थापना होगी।''[२८] एक अन्य स्थान पर भी उन्होंने कहा था, ''हमारे राष्ट्र में लोकतंत्र की बुनियाद मजबूत होने में पंचायती राज संस्थाओं का प्रमुख स्थान रहा है, इन से जो बडी आशाएॅ की गयी हैं, वे तभी पूर्ण हो सकती हैं जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कमजोर वर्ग के लोग ग्रामीण स्वायत्त-शासन में सक्रिय रुप से भाग लें।[२७]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि हमारे देश में पंचायती राज की परम्परा वैदिक कालीन है । समय के परिवर्तन ने इनमें फेरबदल अवश्य किये हैं किन्तु वास्तविक आधार अब भी वही है साथ ही पंचायती राज का महत्व दिन-प्रतिदिन बढा ही हैं और अब ये ग्राम-विकास की एक मात्र इकाई है।[२८]

१५ अगस्त सन् १६४७ को हमारा देष स्वतंत्र हुआ, तथा वर्षों से चली आ रही केन्द्रीयकृत शासन व्यवस्था का अंत हुआ । हमारे देश में लोकतंत्र, राजतंत्र एवं अधिनायकतंत्र शासन व्यवस्था संभव नही थी, इसलिये हमने प्रजातान्त्रिक शासन व्यवस्था को अपनाया । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही हमने

एकतंत्रीय व्यवस्था को समाप्त करके सम्पूर्ण देश में विकेन्द्रित शासन व्यवस्था को मूर्त रुप दिया साथ ही संविधान में देश को एक कल्याणकारी राज्य बनाने हेतु पंचायतों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया ।[२६]

वास्तव में पंचायती राज की कल्पना स्वाधीनता संघर्ष के दौरान ही संजोई जा चुकी थी । स्वाधीनता संघर्ष ने जब-जब अपने चरण में प्रवेश किया और सारी जनता इसमें साझेदार हो गयी तो स्वाभाविक था कि, ‘‘स्वराज्य’’ के बारे में व्यापक दृष्टि से विचार किया जाता और उन लाखों लोगों की ओर विशेष ध्यान जाता जो भारत के ७ लाख गॉवों में दीनता और दरिद्रता का जीवन बिता रहे थे । जब स्वराज्य की व्याख्या ठोस अर्थो मे की जाने लगी तो पंचायती राज ने इसमें बहुत महत्वपूर्ण स्थान पाया । राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस बारे में काफी विवेचन किया। उन्होंने इस बात की व्याख्या की कि राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में इसके क्या मायने होते हैं । सन् १६३७ में अधिकांश प्रान्तों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सरकार बनने तथा सुप्रसिद्ध रिपिन प्रस्ताव पारित होने के बाद ब्रिटिश भारत के विभिन्न प्रान्तों और मैसूर तथा बड़ौदा जैसी देशी रियासतों में पंचायतों के संगठन के लिये सक्रिय कदम उठाये गये।

यहॉं पर यह कहना अनुचित न होगा कि उत्तर प्रदेश की ग्रामीण इकाइयों के पास, पूर्व में कुछ ऐसे अधिकार थे जिनका उल्लेख १२वीं अनुसूचि में नहीं है। इस प्रकार ग्राम स्तर पर अकाल अथवा अन्य विपदाओं में सहायता, जन्म, मृत्यु तथा विवाह के अभिलेखों का अनुरक्षणः किसानों को सरकारी ऋण लेने और वितरण में सहायता सहकारिता का विकास दीवानी तथा फौजदारी प्रशासन, तथा जल संसाधनों तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से क्षोभकर व्यवसायों का निगमन, खण्ड स्तर पर सहकारिता सहित सहकारी शिक्षा तथा सहकारी संस्थाओं के गठन को प्रोन्नति तथा दस्तकारी और उद्योगों में प्रशिक्षण तथा जनपद स्तर पर जनगणना कार्य, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण, पर्यटन की प्रोन्नति, तथा जनपद योजना को बनाना, उसको लागु करवाना तथा उसका अनुश्रवण ७३वें संविधान संषोधन के पूर्व पंचायती राज संस्थाओं के पास थे। यद्यपि १२वीं अनुसूचि में, इनका उल्लेख नहीं है, तथापि ऐसा न होते हुये भी राज्य सरकार द्वारा इन अतिरिक्त विषयों को पंचायती राज संस्थाओं को प्रदान करने पर कोई निषेध नहीं है, और ठीक ऐसा ही उत्तर प्रदेश में हुआ है। उपरोक्त के अतिरिक्त १६६४ का उत्तर प्रदेश पंचायत विधेयक ७४वें संविधान संशोधन में वर्णित विकेन्द्रित नियोजन तथा इसमें ग्रामीण स्थानीय इकाइयों की सहभागिता के बारे में कुछ अतिरिक्त अधिकार प्रदान करता हैं। तद्नुसार १६६४ का उत्तर प्रदेश पंचायत अधिनियम ग्राम पंचायतों को अपने क्षेत्र की आर्थिक विकास की योजना को निर्मित करने का अवसर देता है। ग्राम पंचायत अपनी योजना क्षेत्र पंचायत को अग्रसारित करेंगें। क्षेत्र पंचायत न केवल अपनी विकास योजना बनायेगी वरन् अपने क्षेत्र में अवस्थित ग्राम पंचायतों की योजनाओ का पुनरावलोकन, समन्वयन तथा समाकलन करेंगीं। साथ ही उनका कार्य यह देखना है कि ग्राम और खण्ड स्तर की विकास योजनाओं कार्यन्वित हों तथा वह समय-समय पर उद्देश्यों की प्राप्ति की सफलता का आंकलन करेगी। इसी प्रकार जिला पंचायत न केवल अपनी योजना का निर्माण करेगी, वरन् अपने क्षेत्र

में अवस्थित क्षेत्र समितियों द्वारा निर्मित योजनाओं का पुनरावलोकन, समन्वयन तथा समाकलन करेगी तथा साथ ही ग्राम खण्ड तथा जनपद योजनाओं के कार्यान्वयन को सुनिश्चित करेगी और समय-समय पर उद्देश्यों में सफलता का आंकलन करेगी।

निष्कर्ष

भारत एक विशाल देश है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के तीन प्रमुख आधार रहे हैं - संयुक्त परिवार, जातिव्यवस्था और ग्राम पंचायत। वैदिक युग से चली ग्राम पंचायत व्यवस्था बुद्धकाल में चरम स्तर पर थी। लेकिन जाति व्यवस्था के हावी होने पर उस पर सवर्ण जाति का प्रभुत्व बना। लेकिन महाराजा गायकवाड ने पिछ़डी जातियों को प्रतिनिधित्व देना प्रारम्भ किया, तत्पश्चात ब्रिटिश काल में यह व्यवस्था मजबूत होती गयी। देश की आजादी के बाद नवीन संवैधानिक प्रावधानों ने पंचायती राज व्यवस्था में दलितों का अनुपात बढ़ा दिया है। आज दलित सवर्ण जातियों के साथ राष्ट्र की मुख्य विकास धारा में सहयोग प्रदान कर रहें है।

संदर्भ

१. प्रो० ए० आर० एन० श्रीवास्तव एवं डॉ० लक्ष्मण प्रसाद गुप्त, उ० प्र० में अनुसूचित जातियों की वर्तमान स्थिति, राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा जनवरी-जून २००५, समाज विज्ञान विकास संस्थान, चॉदपुर, बिजनौर पृ० सं० ०३

२. डॉ० आर० के० ठाकुर ''पिछड़े वर्गो की गरीबी का विश्लेषण : गया जिला के अगजी ग्राम पंचायत के संदर्भ में एक समाजशास्त्रीय अध्ययन अप्रकाशित पी-एच०डी० शोध प्रबन्ध, म०वि०वि० बोध गया २००१ पृ० सं० ३

३ डॉ० प्रकाश लुईस एवं कमलकान्त प्रसाद, वर्ण एवं वर्ग व्यवस्था के शिकंजे में फंसे बिहार के दलित, २००१ भारतीय सामाजिक संस्थान नई दिल्ली, पृ० सं० २७, २८

४ प्रो० ए० आर० एन० श्रीवास्तव एवं लक्ष्मण प्रसाद गुप्त, वही पृ०सं० ०४

५ माता प्रसाद, उ० प्र० की दलित जातियों का दस्तावेज, १९९५ देहली किताब घर नई दिल्ली, पृ०सं० १४९-१५०

७ मजूमदार, बी० वी० ''प्रॉबलम्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन'' पटना पृ०सं० २०५

८ मालवीय, एच० डी० १९५६ '' विपेज पंचायत इन इण्डिया'' नई दिल्ली, पृ०सं० ४३

९ अर्थवेद ७/१२/१

१० बाल्मीकि रामायण २/२०

११ ''द पंचायत'' द पब्लिकेषन डिवीजन गर्वमेन्ट - १९५६, पृ०सं० ४६

१२ मालवीय एच० डी० १९५६ ''विलेज पंचायत इन इण्डिया'' नई दिल्ली पृ०सं० ४६

१३ जयसवाल, डॉ० के० पी० १९४३ ‘‘हिन्दू पोलिटी, ए कंसटीटयूषन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया’’, इन हिन्दुस्तान टाइम्स’’ पृ० सं० १२

१४ डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकर – ‘‘मौर्य साम्राज्य का इतिहास’’ भारतीय प्रेस, इलाहाबाद, १९२८, पृ०सं० २१०–११

१५ श्री तेजमल दलक–१९२८ ‘‘मौर्य सम्राज्य का इतिहास’’ इलाहाबाद, पृ०सं० २१०–११

१६ नेहरु जे० एल० – १९४५

१७ रिपोर्ट ऑफ द विलेज पंचायत कमेटी, १९२० पृ० सं० ११

१८ ड०प्र० जिला गजट, इटावा चेप्टर–४ पृ०सं० ११६

१९ डॉ० अरुण कुमार श्रीवास्तव १९८८ ‘‘पंचायती राज व्यवस्था एवं जिला परिषद’’ एक अप्रकाशित शोध–प्रबन्ध लोक प्रषासन विभाग, राजस्थान वि०वि० जयपुर

२० ढोलकिया, आर० पी० १९५१, ‘‘विलेज पंचायत इन उ०प्र०’’ इलाहाबाद, पृ०सं० ०६

२१ महात्मा गॉधी – ‘‘हरिजन’’ २८ साल १९४६

२२ राठौड, डॉ० अमर सिंह २००१ ‘‘पंचायती राज एक परिदृश्य’’ राजस्थान सुजस मई २००१, सूचना एवं जनसंम्पर्क निदेशालय जयपुर।

२३ नरायण (फॉरवर्ड) पंचायती राज एज द वेसिस ऑफ इण्डियन पोलिटी, पृ० सं० ०६

२४ नेहरु, जवाहर लाल १९६५ ‘‘सामुदायिक विकास एवं पंचायती राज साहित्य प्रकाशन, दिल्ली पृ०सं०१०४

२५ भारत सरकार, सामुदायिक विकास, ‘‘पंचायती राज और सहकारिता पर नेहरु के विचार, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली पृ०सं० २७

२६ डॉ० विजेन्द्र सिंह, ‘‘देश की राजनैतिक व्यवस्था मे पंचायतों का योगदान’’ पंचायत एवं समाज सेवा विभाग, मध्य प्रदेश, भोपाल

२७ डे, एस० के० १९६१ ‘‘पंचायती राज ए सिनथेसिस’’, एशिया पब्लिकेशन हाउस, बोम्बे, पृ० सं० १५

२८ श्रीमती इन्दिरा गॉधी – १९७३ ‘‘राष्ट्रीय सम्मेलन और इंसान’’ अखिल भारतीय पंचायत परिषद